National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 860-863

राजस्थानी लोकनाट्यों में प्रयुक्त वाद्य

डॉ० सरस्वती चतुर्वेदी
असीसटैंट प्रोफेसर (संगीत विभाग), चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

राजस्थान की संस्कृति में लोक वाद्य का प्रयोग अत्यधिक महत्व रखता है। संस्कृति की शाखाएं जैसे– लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य आदि। इनमें वाद्यों के प्रयोग शाखाओं की महत्वता को बढ़ाते हैं। शाखाओं में प्राण डालने वाले लोक वाद्य ही होते हैं। जिनके बिना उपयुक्त शाखांए निष्प्राण प्रतीत होती है।

लोक वाद्यों की चार निम्नलिखित प्रकारों में बांटा गया हैः–

1. तत् वाद्य
2. सुषिर वाद्य
3. अवनद्ध वाद्य
4. घन वाद्य

इन चारों प्रकार के वाद्यों का प्रयोग लोकनाट्यों में किया जाता है तथा इन सभी प्रकार के वाद्यों का प्रयोग अलग–अलग नाट्यों के आधार पर किया जाता है। किन्तु सर्वप्रथम हम वाद्यों के वर्गीकरण को समझेंगे–

1. तत् (तार) वाद्य– इन वाद्यों को, इनकी वादन प्रक्रिया की भिन्नता की दृष्टि से, तीन वर्गों में बांटा गया है। झंकार वाले, गज वाले तथा नखवी मिजराव से वादित।

i) झंकार वाले – इकतारा (एक तारा), दो तारा, चौतारा, केनरा, सुरमण्डल इत्यादि।
ii) गज द्वारा वादित – रावण हत्था, गरसिया, चिकारा, चिंकारा मेव कमायजा, सुरिन्दा, सारंगी, लौकिक, गुजरावण सारंगी, डेढ़ पसली सारंगी, जोगिया, सिंधी सांरगी, अलाबू सारंगी, धानी सारंगी इत्यादि।
iii) नखवी (मिजराव) से वादित –रवाव, रवाज, दुकाको, जंतर, अंपग इत्यादि।

2. सुषिर (स्वर या फूंक) वाद्य – इन वाद्यों के तीन वर्ग इनकी निर्माण सामग्री के आधार पर माने गये हैं। बांस, लकड़ी या तुंबी निर्मित, धातु निर्मित तथा नैसर्गिक स्वरूप वाले।

i) बांस, लकड़ी या तुंबी निर्मित – बांसरी, सुर नई, सतारा, नड़, कानी, अलगौजा, भीलों की बांसरी, तारपी, टोटो, पावरी, पेली, मुरली, पुंगा, धुरालियां इत्यादि।
ii) धातु निर्मित – भूंगल, बग्लू, बांकिया, नंगाफणी, करणा, तुरली, सींगा, मोर, चंग (मुखचंग) इत्यादि।
iii) नैसर्गिक स्वरूप वाले – शंख, मशक, सींगी (श्रृंग) इत्यादि।

3. अवनद्ध वाद्य – इसी श्रेणी के वाद्यों के चार वर्ग है। घेरे वाले, कुंडी या भांडनुमा, ढोलनुमा तथा वृन्द्र वाद्य।

i) घेरे वाले – चंग, घेरा, ढफ (डफ) खंजरी, ढफड़ी, चंगड़ी, ढ़ीबको इत्यादि।
ii) कुंडी या भांडनुमा – नगाड़ा, नगाड़ा (निशान), टाम (बंब), नौबत, कमट, कुंडी, तामा, भीलों की कौड़ी, पाबू जी के माटे।
iii) ढोलनुमा वाद्य – ढोलक, ढोल, डेरू, ढाक, डमरू, रावलों की मादल, भीलों की मादल, नटों की ढोलक आदि।
iv) वृन्द्र वाद्य – गड़गड़ाटी आदि

4. घन वाद्य – इन वाद्यों में कुछ वाद्य 'छन–छन या छम–छम' ध्वनि वाले हैं, कुछ 'टन–टन' ध्वनि में बजने वाले हैं। कुछ 'करतल' ध्वनि के हैं तो कुछ 'टक–टक' तथा 'झन–झन' ध्वनि में बजते हैं।

i) छन–छन या छम–छम वाले – घुघंरू, भैरूजी के घुंघरू, करताल, रमझौ, लेजिम, चूड़ियां इत्यादि।
ii) टन्–टन् ध्वनि वाले– टंकारो (घड़ियाला), घंटा, वीर घंटा, टोकरियों, श्रीमंडल झालर इत्यादि।
iii) करतल ध्वनि वाले – मंजीरा, झांझ, ताल इत्यादि
iv) झन–झन ध्वनि वाले– थाली, चिपटा (चिंपिया) हंकल इत्यादि
v) टक–टक ध्वनि वाले – इंडिया, खड्याल, मटका इत्यादि
vi) चई–चई ध्वनि वाले– कागरछ (काग्रेछ) आदि।

अतः इन वर्णो के आधार पर लोकनाट्य के प्रकारों में प्रयुक्त होने वाद्यों का वर्णन हम इस अध्याय में करेंगे। अतः हम सर्वप्रथम तत् वाद्यों का वर्णन करेंगे।

तत् (तार) वाद्य झंकार वाले

इकतारा

राजस्थान के लोकनाट्यों में तार वाद्यों का अपना अलग ही स्थान है। इनके अनेक रूप एव भेद देखे जाते हैं। कई वाद्य विभिन्न समुदायों के नाम से जाने जाते हैं। एक तार का वाद्य 'इकतारा' भी अपनी पहचान लिए हुए है। यह वाद्य कुछ की गोल तुंबी तथा बांस के योग से बनता है। बांस पर दो खूंटियां लगी होती हैं और उपर नीचे दो तार बंधे रहते है। नीचे का तार पंचम में ऊपर का तार षड्ज स्वर मं मिला रहता है। इकतारा भक्ति संगीत का वाद्य माना जाता है। इस वाद्य को अधिकतर भक्ति नृत्य तथा लोकनाट्यों में प्रयुक्त किया जाता है जैसे– रासलीला, रामलीला आदि लोक–नाट्यों में प्रयोग किया जाता है।

चिकारा

यह लोक वाद्य अलवर (राजस्थान) 'मेव' लोगों का प्रसिद्ध वाद्य है। ''इस वाद्य को नौंटकी तथा ख्याल में संगत के लिए प्रयुक्त किया जाता है''। यह वाद्य सारंगी की तरह दिखाई देता है तथा इसको तुन की लकड़ी से बनाया जाता है। तबली के ऊपर भाग पर घोड़ी लगी रहती है जिसमें से तार निकाल कर तबली के नीचे बांधते हैं। इसमें केवल दो या तीन तार ही लगते हैं। इसे भी गज की

सहायता से बजाया जाता है। इसके गज की बनावट चिटिनुमा (टॉकी स्टिक जैसी) होती है। चिकारा वाद्य का प्रचलन केवल मेल लोगों में ही देखा जाता है।

संरंगी

सरंगी को तार वाद्यों में श्रेष्ठतम वाद्य माना जाता है। 'सारंगी राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर के लोम लोक कलाकारों में प्रचलित बहुत लोकप्रिय वाद्य है।'' सांरगी प्रत्येक प्रकार की गायकी में सौन्दर्य को पूर्णता अभिव्यक्त करती है। इसके स्वर बहुत ही मीठे और कंठ के लिए बहुत ही सधे हुए होते हैं। इसमें कुल 27 तार लगे होते हैं। राजस्थान में दो प्रकार की सांरगियां का प्रचलन है –सिंधी सारंगी व गुजरातन सारंगी। सांरगी को वाल लोक कलाकार संगत वाद्य के रूप में ही बजाते हैं। मिरासी, लंगे जोगी, जाति के लोग मांगणियार सारंगी को सागवान, खैर तथा रोहिड़ा की लकड़ी से बनाते हैं। सारंगी के तार बकरे की आंत लगाये जाते हैं तथा के और गज में घोड़े की पूंछ के बाल बंधे होते हैं। सारंगी की तरह ही कमायचा, सुरिन्दा और चिकारा वाद्य है।

लोकनाट्यों में सुषिर वाद्यों का प्रयोग

शहनाई

इस वाद्य को फूंक वाद्यों में श्रेष्ठ स्थान दिया जाता है तथा इसका वादन सबसे मधुर सुनाई पड़ता है यह नकसासी वाद्य है अर्थात इसे बजाते समय मुंह में निरंतर श्वास रहना चाहिए और स्वरों के लिए श्वांस आती रहनी चाहिए इसलिए नाक से बराबर श्वास लेना पड़ता है। इस वाद्य को मांगलिक वाद्य कहा जाता है तथा इस वाद्य की आकृति चिलम की तरह होती है। इस वाद्य के उपरी सिरे पर ताड़ के पत्ते की तूंती बनाकर लगाई जाती है। शहनाई वाद्य को सागवान, शीशम की लकड़ी से बनाया जाता है। राजस्थान में विवाह के अवसर पर इस वाद्य की स्वर लहरियां घर के हर आंगन में गूंजती सुनाई पड़ती है। ''कुचामणि, तुर्राकलंगी, ख्यालों व रम्मतों में इसकी संगत विशेष रूप से की जाती है''।

हारमोनियम

यह वाद्य भी हवा द्वारा बजता है और इस वाद्य में तीनों सप्तकों के सभी स्वरों (कोमल तीव्र) को प्रयोग किया जाता है। राजस्थान के प्रायः सभी प्रकार के लोकनाट्यों में जैसे –कुचामणि, तुर्राकलंगी, नौंटकी, स्वांग, गवरी, आदि नाट्यों में हारमोनियम का प्रयोग किया जाता है परन्तु ख्याल लोकनाट्यों में हारमोनियम का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। इस वाद्य में सभी गायन अभिनेता अपना मुख्य स्वर कायम करके ही गायन शुरू करते हैं।

लोकनाट्यों में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग

नगारा या नक्काड़ा

इस वाद्य को राजस्थानी लोकनाट्यों का प्राण कहा जाता है। इसकी लय के कमाल पर ही सम्पूर्ण नाट्य की सफलता निहित रहती है। यह वाद्य भी नौबत की शक्ल का होता है पर नोबत से छोटा होता है, और इसी की शक्ल की नगाड़ी होती है। इसको लोकनाट्यों में शहनाई के साथ बजाया जाता है। लोक नृत्यों में नगाड़ों की संगत के बिना रंगत ही नहीं आती। इन नगाड़ों में बड़ा नगारा तांबे का बनाया जाता है तथा इसे ऊँट की खाल से मढ़ा जाता है तथा इसके साथ ही छोटी नगारी इसी की शक्ल लोहे की बनी रहती है तथा भैंस के चमड़े से मढ़ी होती है। नगारे की आवाज गम्भीर तथा नागरी की आवाज ऊँची तार सप्तक में होती है। नगारी की आवाज को ऊँची रखने के लिए इसे गर्म भी करना होता है। यह प्रायः दोनों एक साथ बजायें जाते हैं। ये लकड़ी की चोट से बजाये जाते हैं। नक्कारे पर गति पूर्ण ढंग से लय की अनुमति देते हुए सरल एंव जटिल सभी प्रकार के ठेके बजाये जाते हैं।

नौबत

इस वाद्य को करौली में प्रचलित हेला के ख्याल का महत्वपूर्ण खाल वाद्य कहा जाता है। यह वाद्य लगभग साढ़े चार फीट ऊँचा तथा अर्धगोलाकार व ऊपर से चौड़ा और नीचे से सुकड़ा लोहे से बना हुआ होता है जिस पर भैंस की खाल का चमड़ा मढ़ा होता है। इसके नीचे के भाग को तला कहा जाता है तथा इसमें एक छिद्र होता है। इसको मढने के लिए भैंस के चमड़े की रस्सी काम में लायी जाती है। अच्छा और आकर्षण ''तोर'' लेने के लिए इसे घी और हल्दी से तर रखा जाता है।

ढोलक

राजस्थान के लोकनाट्यों में 'ढोलक' सर्वोधिक प्रचलित लोक वाद्य है। राजस्थान में भवाई जाति के लोक ढोलक वाद्य बजाने में काफी निपुर्ण होते है। इस पर लगभग सभी प्रकार की तालों को बजाया जाता है। ढोलक को बजाते समय तबले या मृदंग की तरह पुड़े पर जमाकर हाथ नहीं रखा जाता है बल्कि इस पर तो अंगूली की स्वतन्त्र चटकारी भी चलती है। ढोलक वाद्य का स्वरूप न मृदंग की तरह होता है और न पखावज सा और न ही मणीपुरी के खोल जैसा होता है। ढोलक को 'ढोल' की श्रेणी का छोटा वाद्य माना जाता है। इसका खोल सागवान, आम, नीम, शीशम आदि की लकड़ी से बनाया जाता है। खोल की लम्बाई औसतन डेढ़ फुट की होती है। दोनों और के खुले मुखों का व्यास लगभग छः इंच से दस इंच तक का (खोल की बनावट के अनुसार) होता है। खोल का मध्य भाग उभरा हुआ होता है तथा दोनों तरफ खुले मुख मध्य भाग की अपेक्षा संकरे होते हैं। नर (धर्रा) कहलाने वाला मुख मादी वाले मुख से कुछ बड़ा होता है।

मृदंग (पखावज)

मृदंग (पखावज) का प्रयोग रासधारी व रामलीलाओं में अधिक किया जाता है। मृदंग की प्राचीनता का प्रमाण अनेक प्रकार की मूर्तियां तथा चित्रों द्वारा प्रदर्शित होता है। शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार, गायन में पखावज का प्रयोग किया जाता है। दायां तबला और बांया डग्गा दोनों के निचले भाग मिलाकर ढोलक की तरह रख दिए जाये तो पखावज का ही रूप बन जाता है। इसमें अंतर केवल इतना ही है कि पखावज में दायां–बाया अलग–अलग ने होकर दोनों का आकार (पोल) एक सा ही होता है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूंज अधिक पाई जाती है अंगूलियों का काम अधिक महत्व रखता है। पखावज में बाई और गीला आटा लगाया जाता है। जब स्वर नीचा करना होता है तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं। ऊँचां स्वर करने के लिए आटा कम करते हैं। तबला और पखावज मिलाने का ढंग लगभग एक समान होता है।

मादल

राजस्थान में गवरी लोकनाट्यों में मादल रूपी वाद्य का प्रयोग रूप से किया जाता है। इस वाद्य की शक्ल मृदंग (पखावज) की तरह होती है किन्तु इसको मिट्टी से बनाया जाता है। राजस्थान में मिट्टी का यह वाद्य मेवाड़ मोलेला गांव में बनता है। इस वाद्य की

गूंज तथा बोलों का प्रभाव निराला होता है। पखावज की तरह इसमें आटा लगाया जाता है। मादल को बकरे या हिरण की खाल से मढ़ा जाता है इसका एक मुंह छोटा और दूसरा बड़ा होता है। इस वाद्य के साथ थाली भी बजाई जाती है।

तबला

ऐसा माना जाता है कि अमीर खुसरो नामक संगीतज्ञ ने पखावज को बीच में से दो भागों में काटकर तबले का अविष्कार किया था। इसमें दाहिना तबला लकड़ी का होता है तथा बायां मिट्टी या किसी धातु का । दोनों के मुंह पर चमड़ा मढा रहता है, सि पुड़ी कहते हैं। पुड़ी के किनारे चारों और चमड़े की गोट लगी रहते हैं जिसे चांटी कहते हैं। दाहिने तबले की पुड़ी के बीच में और बांये (डग्गे) की पुड़ी के बीच में कुछ हटकर स्याही लगी रहती है। दायें और बायें दोनों चमड़े की डोरी से कसे रहते हैं। इन्हें बद्धी या दुमाल भी कहते हैं। दायें और बायें दोनों चमड़े की डोरी से कसे रहते हैं। इन्हें बद्धी या दुमाल भी कहते हैं। चारों तरफ चमड़े के फीते का बुना हुआ गजरा लगा रहता है और गट्टे ऊँचें करने पर स्वर नीचा होता है। स्वर को अधिक ऊँचा करना होता है, तभी गट्टे एक छोटी हथौड़ी से ठोके जाते हैं मामूली स्वर का उतार चढ़ाव के लिए चांटी के किनारे वाली पगड़ी या गजरे पर हल्का आघात करने से ही काम चल जाता है। तबले का प्रयोग जयपुरी शैली में, रम्मतों और माच के ख्यालों में विशेष रूप से किया जाता है।

चंग

इस वाद्य को तुर्रा–कलंगी के ख्यालों तथा दांगलिक ख्यालों में मुख्यतः बजाया जाता है। होली के त्यौहार पर इस वाद्य का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। चंग वाद्य गोलाकार घेरे से बना होता है। इसके एक तरफ बकरे की खाल मढ़ी होती है। इसे दोनों हाथों से बजाया जाता है। इसको ढप के नाम से भी जाना जाता है। चंग की सबसे प्रिय ताल कहरवा है। कहरवे के सुन्दर और कबतमान बोल इसे अत्यन्त मधुर और आकर्षक बनाने में सहायक होते है। चंग को बांये हाथ में उठाकर हथेली पर जमा लिया जाता है। बांये हाथ की अंगुलियों में लकड़ी की चीप रहती है और दांये हाथ से उस पर बोल निकाले जाते हैं।

ढपली (चंगडी)

इसका आकार चंग वाद्य से छोटा होता है और चंग की ही तरह इसे भी भेड़ की खाल से मढ़ा जाता है लेकिन इसकी लकड़ी के घेरे के बीच–बीच में पीतल व कांसे के घुघंरू या झीझे लगे होते हैं। झण्कार की आवाज ही इसका विशेष सौन्दर्य है। तुर्रा–कंलगी ख्यालों में इस वाद्य का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

लोकनाट्यों में घन वाद्यों का प्रयोग

मंजीरा

यह पीतल तथा कांसे की मिश्रित धातु से बना गोलाकार वाद्य यंत्र है। दो मंजीरों को आपस में बजाकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। होली के अवसर पर मंजीरों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह निर्गुणी भजनों के साथ तम्बुरे, तन्दुरे, इकतारे के साथ बजता है। ढप ढोलक के साथ भी बजता है। इसकी ध्वनि बड़ी मधुर होती है। मंजीरा वाद्य को रम्मतों और धार्मिक ख्यालों में भी विशेष रूप से प्रयोग में लाया जाता है। इसमें चाचर कहरवा आदि तालों को बजाया जाता है। तेरह ताली वाले इसको बजाने में काफी अभ्यस्त होते हैं।

थाली

भील, कालबेलिया आदि जातियों में लोक नृत्यों के साथ थाली का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। ये थाली कांसे की बनी होती है तथा इसमें छिद्र करके उसमें रस्सी बांधकर अगूंठे से लटका दी जाती है । थाली वाद्य को लकड़ी के डंडो के आघात से बाजाया जाता है। गवरी लोकनाट्य में थाली का प्रयोग सर्वोधिक होता है।

खड़ताल

राजस्थान में खड़ताल वाद्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह एक लोक वाद्य है। खड़ताल शब्द करताल के द्वारा बनाया गया है। इस वाद्य के प्रमुख कलाकारों में सद्दीक खां का नाम बहुत प्रसिद्ध रहा है। सद्दीक खां खड़ताल बजाने बहुत माहिर हैं और इसके साथ ही साथ उनको सैकड़ों लोकगीत कंठस्थ हैं। ये खड़ताल के साथ–साथ सारंगी कमायचा भी बजाते हैं उन्हें खड़ताल वाद्य का जादूगर माना जाता है।

झांझ

यह मंजीरे का विशाल रूप माना जाता है। ''इन्हें रस्सी में पिरोकर दोनों हाथों से बजाया जाता है। तांसा और बड़े ढोल के साथ झांझ का प्रयोग किया जाता है''। इसकी लम्बाई–चौडाई एक फुट के लगभग होती है। झांझ का प्रयोग शेखावटी, रम्मतों अलीबक्षी ख्यालों तथा कच्छी घोड़ी नृत्य और बाजे के साथ विशेष रूप से की जाती है, मोहर्रम में भी इस वाद्य को बजाया जाता है।

चीमटा (झांझ वाला)

चीमटा प्रायः धार्मिक तथा भक्तः भिक्षु तथा साधु–सन्यासी पात्रों द्वारा नाट्यों में प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य में लोहे की दो लम्बी पत्तियों के बाहर की और थोड़ी–थोड़ी दूर पर पीतल की गोल कटी हुई छोटी–छोटी तश्तरियां लगी दी जाती है। एक हाथ से चीमटा पकड़कर दूसरे हाथ से चीमटे को दबाकर एक पत्ती से दूसरी पत्ती पर एक सी लय में आघात किया जाता है जिसमें दोनों पतियां टकराने पर पीतल की छोटी तश्तरितयों में गति उत्पन्न होती है और उसकी झनकार से मधुर ध्वनि उत्पन्न होकर एक ऐसा समा बांधत्र देती है जो भक्तजनों को प्रभु भक्ति रस में सरोबार कर देती है।

निष्कर्षता राजस्थानी लोकनाट्यों की विभिन्न शैलियों में जिन वाद्यों का प्रयोग किया जाता है, हम उनका विवरण इस प्रकार भी कर सकते हैं–

कुचामणी ख्याल	–	नक्काड़ा, शहनाई, हारमोनियम
जयपुरी ख्याल	–	चार सारंगियां, दो तबले जोड़ी, दो हारमोनियम मंजीर
शेखावाटी ख्याल	–	नक्काड़ा, ढोलक, हारमोनियम
रम्मतें (बीकानेर–जैसलमेर)	–	नगाड़ा, ढोलक, शहनाई, हारमोनियम चीमटा
तुर्राकलंगी	–	चंग, ढपली (दंगली बैठक में) तथा अट्टालीनुमा मंचीय ख्यालों में नक्काड़ा, शहनाई, सारंगी, हारमोनियम
माच के ख्याल	–	ढोलक, तबला, सारंगी, हारमोनियम
नौंटकी ख्याल	–	नक्काड़ा, ढोलक, तबला, सारंगी, चिकारा, हारमोनियम, झांझ
कठपुतली ख्याल	–	ढोलक
रामलीला	–	ढोलक, हारमोनियम
रासलीला	–	मृदंग, ढोलक, हारमोनियम

गवरी – मादल, थाली
भवाई – ढोलक, हारमोनियम

उपरोक्त वाद्य राजस्थान के जन–जीवन तथा लोकनाट्यो में इस प्रकार रस बस गए हैं कि इनका प्रत्येक स्वर यहां की माटी और संस्कृति की गंध लिए हुए होता है।

सन्दर्भ

1. बोराणा, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थानी संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, 2006, पृ.स.11
2. शर्मा, लवली, खींची, ईश्वर, राजस्थानी लोकगीतों की शास्त्रीयता, राधा पब्लिकेशंस, 2004, पृ.स.225
3. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर, 2003, पृ.स.92
4. बोराणा, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थानी संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, 2006, पृ.स.171
5. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर, 2003, पृ.स.92
6. भटनागर, धर्मेन्द्र, पी.के.सिंघल, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन, जयपुर, 2004, विकास प्रकाशन, जयपुर पृ.स.629
7. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर, 2003, पृ.स.95
8. भटनागर, धर्मेन्द्र, पी.के.सिंघल, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन, जयपुर, 2004, विकास प्रकाशन, जयपुर पृ.स.629
9. शर्मा, लवली, खींची, ईश्वर, राजस्थानी लोकगीतों की शास्त्रीयता, राधा पब्लिकेशंस, 2004, पृ.स.236
10. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर, 2003, पृ.स.98